VPM CLASSES

NTA UGC NET

HINDI

SAMPLE THEORY

– हिन्दी आलोचना

9001894070

www.vpmclasses.com

UGC NET - HINDI
SAMPLE THEORY

PAPER - II

हिन्दी आलोचना

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आलोचनात्मक प्रतिमान
- डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की समीक्षा पद्धति
- डॉ. रामविलास शर्माजी की समीक्षा पद्धति
- डॉ. नामवर सिंह के आलोचक रूप पर प्रकाश
- विजय देव नारायण साही के आलोचक रूप पर प्रकाश
- प्लेटो और अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त तथा अरस्तू का विरेचन सिद्धान्त
- वर्डस्वर्थ का काव्य भाषा सिद्धान्त

VPM CLASSES
For IIT-JAM, JNU, GATE, NET, NIMCET and Other Entrance Exams
Web Site www.vpmclasses.com E-mail-vpmclasses@yahoo.com

हिन्दी आलोचना :

I. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आलोचनात्मक प्रतिमान –

हिन्दी समालोचना में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्थान सर्वोपरि है। हिन्दी आलोचना को भारतीय एवं पश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों से समन्वित करने का श्रेय उन्हें ही दिया जाता है। एक ओर तो वे प्राचीन रसवाद के समर्थक थे तो दूसरी ओर पाश्चात्य समालोचना के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक एवं व्याख्यात्मक पक्षों के समर्थक थे। यद्यपि शुक्ल जी ने सैद्धान्तिक समालोचना सम्बन्धी किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना नहीं की तथापि उनके निबन्धों एवं समीक्षात्मक ग्रन्थों से उनकी आलोचना पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सूर, तुलसी और जायसी पर शुक्ल जी ने जो समालोचनाएं प्रस्तुत की उनसे उनके आलोचनात्मक प्रतिमानों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

आचार्य शुक्ल का काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण :

आचार्य शुक्ल के काव्य सम्बन्धी विचार उनके निबन्धों में यत्र–तत्र बिखरे हुए है जिनका संकलन करने पर निम्न तथ्य सामने आते है :

1. शुक्ल जी रसवादी आचार्य थे। 'कविता क्या है' निबन्ध में वे काव्य की परिभाषा देते हुए कहते है – ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द–विधान करती आयी है, उसे कविता कहते है।''
2. शुक्ल जी कविता का मूल उद्देश्य रसानुभूति तो मानते ही है, साथ ही वे यह भी कहते है कि काव्य के द्वारा हमारे मनोभावों का परिष्कार और शेष सृष्टि साथ हमारे रागात्मक सम्बन्धों की रक्षा और निर्वाह भी होता है।
3. उनकी मान्यता है कि कविता की हृदय को प्राकृत दशा में लाकर हमें मनुष्यता की उच्च भूमि पर ले जाती है। भाव योगी की इस उच्च कक्षा पर पहुंचे हुए व्यक्ति के हृदय का तादात्म्य शेष सृष्टि के साथ हो जाता है।
4. शुक्ल जी कविता का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं मानते। यदि मनोरंजन की कविता का एकमात्र उद्देश्य होता तो कविता भी विलास की एक सामग्री बन जाती, पर ऐसा नहीं है।
5. उनकी धारणा है कि कविता केवल अर्थ ग्रहण नहीं कराती वह बिम्ब ग्रहण कराती है, पाठक के मन में चित्र उपस्थित करती है।

VPM CLASSES

6. आचार्य शुक्ल सौन्दर्य को बाहर की वस्तु न मानकर मन के भीतर की वस्तु मानते है।

7. शुक्ल जी कविता को चमत्कारपूर्ण उक्ति मानने के पक्ष में नही है अतः उन साधनों का विरोध करते है जो काव्य में जान–बूझकर चमत्कार उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होते है। वे कहते है – ''जो उक्ति हृदय में कोई भाव जाग्रत कर दे वही कविता है और जो उक्ति केवल कथन के ढंग के अनूठेपन, रचना वैचित्र्य, चमत्कार, कवि के श्रम या निपुणता के विचार में ही प्रवृत्त करे वह सूक्ति है''

8. शुक्ल जी धारणा है कि एक की अनुभूति को दूसरे के हृदय तक पहुंचाना ही कला का लक्ष्य है। इस प्रकार वे 'सम्प्रेषण' पर विशेष बल देते दिखाई देते है।

9. वे रसवादी आचार्य है और उसी शब्द विधान को काव्य की संज्ञा देते है जो हृदय को मुक्तावस्था में पहुंचकर रसानुभूति कराए। इस प्रकार वे 'रस' को काव्य की आत्मा मानने के पक्षधर है।

10. शुक्ल जी काव्य में प्रकृति चित्रण को प्रमुख स्थान देते है, किन्तु केवल सुन्दर दृश्यों की ही नहीं सभी प्रकार के साधारण–असाधारण दृश्यों को काव्य में वर्णित करने की बात कहते है जैसा संस्कृत के प्राचीन कवियों – कालिदास, भवभूति, वाल्मीकि ने किया है।

11. काव्य की भाषा में चित्रोपमता, मूर्ति विधान की शक्ति, वर्ण विन्यास, नाद सौन्दर्य एवं गुणबोधक शब्दों के प्रयोग पर वे बल देते दिखाई पड़ते है।

पं. रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना के प्रतिमान सम्बन्धी कोई ग्रन्थ नही लिखा है। निबन्धों एवं उनकी समीक्षाओं में उन्होंने काव्य–कविता के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए है, उन्हीं के आधार पर शुक्लजी के आलोचना–सम्बन्धी प्रतिमानों का उल्लेख करेंगे।

हिन्दी आलोचना के वर्तमान रूप का क्रम वस्तुत आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की रसवादी आदर्शवादी आलोचना पद्धति के साथ आरम्भ होता है। आचार्य शुक्ल आलोचना के एक सुष्ठु, सुनिश्चित और भारतीय रस–सिद्धान्त आदर्शके प्रतिस्थापक है। उन्होंने अपने रस सिद्ध आचार्यत्व द्वारा हिन्दी आलोचना को वास्तविक स्वरूप की प्रतिष्ठा की। कविता क्या है ? शीर्षक निबन्ध में कविता की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है कि जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी युक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते है। इस साधना को हम भावयोग कहते है और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते है। स्पष्ट है कि शुक्लजी काव्य–रचना का उद्देश्य निर्विवाद रूप से रस–सिद्धि मानते है। आगे चलकर वह लिखते है कि ''इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।

इस संदर्भ में शुक्लजी का यह कथन भी दृष्टव्य है कि समस्त मानव जीवन के प्रवर्तक भाव या मनोविकार ही होते है।

काव्य का आत्मा से सम्बन्धित सम्प्रदायों में दो सम्प्रदाय प्रमुख ठहरते है – रस सम्प्रदाय और अलंकार सम्प्रदाय। शुक्लजी संस्कृति के रसवादी आचार्यो की भांति अलंकारों को काव्य के गौण तत्व, रस के सहायक मानते है, उसकी आत्मा नहीं, वे बाह्य उपकरण मात्र है। अलंकारों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है, ''वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुंचाने के लिए... इस तरह के विभिन्न विधान और कथन के ढंग जो अलंकार कहलाते है इनके सहारे से कविता अपना बहुत कुछ प्रभाव बढ़ाती है।

अलंकारवादी आचार्यो का उल्लेख करने के उपरान्त शुक्लजी ने स्पष्ट लिख दिया है कि वर्ण्यवस्तु और वर्णन प्रणाली बहुत दिनों से एक–दूसरे से अलग कर दी गई है। ..... सुन्दर अर्थ की शोभा बढ़ाने में जो अलंकार प्रयुक्त नहीं, वे काव्यलंकार नहीं।

कविता की भाषा के सम्बन्ध में शुक्लजी ने कुछ प्रतिमान स्थापित किए है, यथा –

(i) भाषा–कथ्य को चित्र रूप में हमारे सामने लाए।

(ii) भाषा में जाति संकेत वाले शब्दों की अपेक्षा विशेष व्यापार सूचक शब्द अधिक रहते है।

शुक्लजी ने लिखा है कि यूरोप में भी लोग वादों में डूब गये है। इसका लक्ष्यार्थ है कि वे भी रसात्मक अनुभूति को श्रेष्ठ मानते है।

II. शुक्लोत्तर समीक्षा और समीक्षक – हजारी प्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. राम बिलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, विजय देव नारायण साही, समकालीन आलोचना –

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की समीक्षा पद्धति :

शुक्लोत्तर हिन्दी समीक्षा जगत् में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रमुख स्थान है। वह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा पद्धति के प्रमुख प्रतिनिधि भी कहे जा सकते है। द्विवेदीजी का आलोचनात्मक साहित्य मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – इतिहास सम्बन्धी और समीक्षा सम्बन्धी। हिन्दी साहित्य का आदिकाल और हिन्दी साहित्य की भूमिका साहित्य के इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ है। कबीर, नाथ सम्प्रदाय, मध्यकालीन धर्म साधना और प्राचीन भारत के कलात्मक नामक पुस्तकें द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत आती है। ध्यातव्य यह है कि कई पुस्तकों में इतिहास भी है। उनके दोनों रूप–इतिहासकार एवं समीक्षक एक साथ चलते रहते है। द्विवेदी के निबन्धों में हमें दो प्रकार की समीक्षा प्राप्त होती है – सैद्धान्तिक समीक्षा तथा व्यावहारिक समीक्षा।

सैद्धान्तिक समीक्षा–सम्बन्धी उनके प्रमुख निबन्ध है –

(i) साहित्य का मर्म, (ii) मनुष्य की सर्वोत्तम कृति–साहित्य मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है, (iii) साहित्य में व्यक्ति और समष्टि, (iv) करण निगम और रसस्वादन की प्रक्रिया तथा (v) हमारी संस्कृति और साहित्य का सम्बन्ध।

समष्टि रूप से इस युग में समीक्षा के क्षेत्र में नव–चेतना के दर्शन होने लगे थे अर्थात् उसमें मौलिक और गम्भीर चिन्तन के लक्षण प्रकट होने लगे थे। इसी युग में कविता क्या है ? लेख के प्रकाशन के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का उदय हुआ। शुक्लजी ने हिन्दी समीक्षा की काया ही पलट दी।

शुक्ल युग – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। इस युग में आलोचनाएं तीन रूपों में पाई गई –

1. व्यक्तिगत कवि या कृति विशेष की आलोचना के रूप में
2. सैद्धान्तिक आलोचना के रूप में तथा
3. ऐतिहासिक आलोचना के रूप में

इस युग में शुक्लजी द्वारा प्रभावित अनेक समालोचक उभर कर आये। इनमें प्रमुख है – डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाबू गुलाबराय, नलिनी मोहन सान्याल आदि।

आचार्य शुक्ल के बाद हिन्दी समालोचना कई रूपों में विकसित हुई। इनमें प्रमुख थी समाजवादी एवं प्रभाववादी समालोचना। सैद्धान्तिक एवं विवेचनात्मक समालोचनाएं तो विकसित हो ही चुकी थी। कुछ आलोचक मनोवैज्ञानिक प्रयोगवादी समीक्षा को लेकर चले है। प्रमुख है अज्ञेय, डॉ. नागेन्द्र, नलिन विलोचन शर्मा आदि। अन्य प्रमुख समालोचक है – डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, भगवतशरण उपाध्याय, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. शिवदान सिंह, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. लक्ष्मी नारायण सुधांशु, डॉ. परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. रामचरण महेन्द्र, डॉ. विद्या निवास मिश्र, डॉ. चन्द्र बलीसिंह, डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' आदि।

विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में किए गए शोधकार्य द्वारा भी इस दिशा में पर्याप्त योगदान किया जा रहा है। पिछले वर्षो में भाषाशास्त्र, लोकसाहित्य तथा कई विधाओं पर गवेषणात्मक शोर्ध कार्य हुआ है। इसके द्वारा नवीन तथ्यों एवं सामग्री पर प्रकाश पड़ा है तथा साहित्य के मूल्यांकन के प्रति नवीन जागृति उत्पन्न हुई हैं। हिन्दी समालोचना सर्वांगपूर्ण एवं समृद्ध हैं। उसका भविष्य सर्वथा उज्ज्वल है।

VPM CLASSES

व्यावहारिक समीक्षा–सम्बन्धी आपके प्रमुख निबन्ध है – (i) भारतीय साहित्य की प्राण–शक्ति, (ii) साहित्य के नये मूल्य, (iii) हिन्दी का भक्ति साहित्य, (iv) समालोचक की डाक, (v) साहित्य का नया कदम, (vi) आलोचना का स्वतन्त्र मान, (vii) क्या आपने मेरी रचना पढ़ी है ?

द्विवेदीजी की समीक्षा पद्धति को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के सम्पर्क में रहे थे। उनकी अन्तर्राष्ट्रीयता उनका मानववाद तथा उनकी सामंजस्य भावना द्विवेदीजी ने ज्यों–की–त्यों ग्रहण की है। द्विवेदी सदैव सन्तुलित बने रहते है और पूर्वाग्रह जैसी चीज उनमें बिल्कुल नही है। उनके निबन्धों में एक गम्भीर विचारक के समस्त गुण पाए जाते है – विचारात्मकता चिन्तन–प्रधानात्मकता तथा गवेषणा की चेष्टा। सैद्धान्तिक समीक्षा सम्बन्धी निबन्धों की शैली गम्भीर एवं पांडित्यपूर्ण है।

हिन्दी आलोचना के विकास में द्विवेदीजी का योगदान इस प्रकार है –

(i) साहित्य समीक्षा की नवीन वैज्ञानिक दृष्टि–जिसे हम ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय दृष्टि कह सकते है।

(ii) साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या

(iii) हिन्दी साहित्य का पुनर्निर्माण

(iv) समीक्षा में गहन अध्ययन, पाडित्य एवं खोज का सफल प्रयोग

(v) इतिहास और समीक्षा का समन्वय

(vi) मध्यकालीन धार्मिक साहित्य की गौरव–प्रतिष्ठा।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि उन्होंने हिन्दी समीक्षा को एक नई दिशा दी तथा उदार एवं वैज्ञानिक दृष्टि दी। द्विवेदीजी की सन्तुलित विचारधारा ही सच्चे अर्थो में वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय विचारधारा है और हिन्दी समीक्षा को उनकी यही सबसे बड़ी देन है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी की समीक्षा पद्धति :

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के समीक्षा सम्बन्धद सप्त–सूत्री मानदण्ड इस प्रकार है –

(i) साहित्य में मानव जीवन के विविध रूपों की अभिव्यक्ति होती है।

(ii) यह अभिव्यक्ति किसी प्रकार या माध्यम से होती है जिसे हम कल्पना कह सकते है।

(iii) कल्पना ही साहित्य या काव्य का नियामक तत्व है।

(iv) साहित्य में वस्तु और रूप के अनुस्थूल सम्बन्ध को समझना ही सबसे बड़ी साहित्य साधना है।

VPM CLASSES

(v) अपने व्यापक अर्थ में भावाश्रित रूप एक मनोवैज्ञानिक पदार्थ है जिसके विविध उन्मेष, स्वप्न, दिवा स्वप्न, बाल–कल्पना तथा साहित्य आदि अनेक क्षेत्रों में देखे जाते है। साहित्य में इनकी विशेष प्रवृत्ति सार्वजनीन बनने की राही है। यह सारी सामग्री शब्दों का परिधान धारण करके उपस्थित होती है। अतएव शब्दरहित रूप की अपेक्षा यह शाब्दिक रूप अपनी विशेषताएँ रखने को बाध्य है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी सौष्ठववादी समालोचक है। उनकी समीक्षा पद्धति की विशेषताएं इस प्रकार है –

1. वाजपेयी शुद्ध साहित्यिक मानदण्ड कड़ी मान्यता वाली आलोचना के पक्षपाती है।
2. वाजपेयी जी एक नवीन मार्ग के प्रवर्तक है। उन्होंने अपने द्वारा किए हुए मूल्यांकन का भी मूल्यांकन किया है और सुधार एवं परिष्कार को स्थान दिया है। संक्षेप में उनकी समीक्षा पद्धति विकासशील है।
3. वाजपेयीजी ने शुक्लजी की विश्लेषणात्मक पद्धति को कुछ आगे बढ़ाकर पूर्णतः निगमनात्मक कर दिया है।
4. वाजपेयीजी की आलोचना में ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा विवेचनात्मक पद्धतियों के अतिरिक्त प्रगतिवादी, फ्रायडवादी, प्रभाववादी आदि सभी पद्धतियों का योग रहता है। सारांश यह है कि समन्वयशीलता वाजपेयीजी की आलोचना पद्धति की एक बहुत बड़ी महत्वपूर्ण विशेषता है।

आचार्य वाजपेयी छायावादी युग के प्रथम प्रभावशाली समीक्षक है। वह छायावादी काव्य के महत्व को स्वीकृत एवं अधिष्ठित करके विषय की सूक्ष्म विवेचना में संलग्न दिखाई देते है।

वाजपेयी की समीक्षा पद्धति वस्तुतः शुक्लजी की रसवादी परम्परा और छायावाद की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा परम्परा का समन्वित रूप है। आचार्य वाजपेयी का समीक्षा सिद्धान्त संक्षेप में काव्य कला की सौन्दर्य संवेदना या अनुभूति की व्यंजना की परीक्षा का सिद्धान्त है। डॉ. कमलकान्त पाठक के शब्दों में, ''विकासशील छायावादी समीक्षा सिद्धान्त, अभिधेय वाजपेयी की आलोचना दृष्टि का तात्विक और समग्र स्वरूप बोध है। उन्हें युग विशेष का संवेदनशील समीक्षक और स्थायी साहित्य का समर्थ आचार्य कहना चाहिए।''

डॉ. रामविलास शर्माजी की समीक्षा पद्धति :

समालोचना के क्षेत्र में मार्क्सवादी आलोचना/समीक्षा पद्धति का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र में कई सशक्त समालोचक उभर कर आए है जिनमें प्रमुख हस्ताक्षर है – डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. शिवदान सिंह चौहान तथा प्रकाश चन्द गुप्त। हस समालोचना का आधार मार्क्सवादी जीवन

दर्शन है। यह आलोचना प्रायः एकांगी होती है, क्योंकि इसमें व्यक्तिगत प्रतिभा का स्फुकरण तथा आन्तरिक कलापक्ष की उपेक्षा करके केवल सामाजिक तत्वों की परीक्षा की जाती है।

डॉ. रामविलास शर्मा साम्यवादी है और मार्क्सवादी जीवन–दर्शन से पूर्णतः प्रभावित भी है, परन्तु उन्होंने समीक्षा में शुद्ध मार्क्सवादी दृष्टि को इस प्रकार देखा है कि वह भारत के मानववाद के समकक्ष ठहरती है। उन्होंने रस सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में समाजवादी आलोचना की पद्धति अपनाई है यानी अन्य प्रगतिवादियों के समान वह लकीर पीटने वाले आलोचक नहीं है। उनकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने प्राचीन साहित्य का अध्ययन पूरी गहराई में जाकर किया है और आधुनिक परिवेश में इसको देखने का प्रयत्न किया है। डॉ. शर्मा के समीक्षा सम्बन्धी चिन्तन को यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है –

शाश्वत साहित्य : डॉ. शर्मा के अनुसार जिस समाज में वर्गभेद कायम है, उसमें वर्गो से परे होकर शाश्वत साहित्य की रचना करना अत्यन्त कठिन है।

प्रगतिवादी साहित्य : कुछ लोगों का कहना है कि प्रगतिवादी साहित्य शाश्वत सत्य नहीं हो सकता हैं। इसके उत्तर में डॉ. शर्मा का कहना है कि मार्क्सवाद सत्य को ऐतिहासिक विकास–क्रम में देखता हैं। वह ऐतिहासिक परिस्थितियों से परे नही हैं।

सौन्दर्य का स्वरूप : सौन्दर्य क्या है –प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करते हुए डॉ. शर्मा ने लिखा है कि प्रकृत मानव जीवन और ललित कलाओं का आनन्ददायक जीवन का नाम सौन्दर्य है। सीधी सी बात है – वह शिवम् में सौन्दर्य का बोध करते है।

छायावाद : आचार्य शुक्ल ने छायावाद का विरोध किया। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र और डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उसको प्रतिष्ठित किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने छायावाद की प्रतिष्ठा में सहयोग दिया विशेषकर महाप्राण निराला के संदर्भ में।

मार्क्सवाद : उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टि को पूरे हिन्दी साहित्य की परम्परा में व्यवस्थित करके मार्क्सवाद को नई शक्ति प्रदान की।

उपसंहार : डॉ. शर्मा ने अपनी आलोचनाओं के माध्यम से हिन्दी की गौरव रक्षा के लिए निरन्तर संघर्ष किया है।

डॉ. नामवर सिंह के आलोचक रूप पर प्रकाश : डॉ. नामवर समाजशास्त्रीय अथवा मार्क्सवादी समालोचक है। डॉ. रामविलास शर्मा की भांति आपने भी हिन्दी समीक्षा को व्यापक परिवेश दिया है। आप प्रगतिवादी आलोचक है, परन्तु प्रगतिवादी आलोचकों की भांति एकांगी दृष्टि नहीं रखते है। पूर्ववर्ती

प्रगतिवादी आलोचकों से उनकी भिन्नता इस बात में है कि उन्होंने नयी कविता को सहानुभूतिपूर्वक देखा है। आपकी आलोचनात्मक कृतियाँ दस प्रकार है –

(1) **छायावाद** (सन् 1954 ई) – इसमें डॉ. नामवर सिंह ने छायावाद में निहित सामाजिक सत्य का उद्घाटन किया है।

(2) **इतिहास और आलोचना** – इस पुस्तक में सामान्य रूप से साहित्यिक मूल्यों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

(3) **कविता के नये प्रतिमान** (सन् 1968 ई.) – इस पुस्तक में नयी कविता के संदर्भ में काव्य मूल्यों का प्रश्न उठाया गया है।

विजय देव नारायण साही के आलोचक रूप पर प्रकाश : विजय देव नारायण साही वस्तुतः नई कविता के कवि है। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार, छायावाद के कवियों में महादेवी रहस्यवादी मानी जाती है। नई कविता के कवियों मे विजय देव नारायन साही रहस्यवादी कवि माने जाते है। साही ब्रह्माण्ड के रहस्य जानने के लिए व्याकुल दिखाई देते है। 'मछलीघर' की अधिकांश कविताओं में इसी रहस्य का अन्वेषण है।

'नई कविता' के समानान्तर जब आधुनिकतावाद का आन्दोलन चला, तो साही उस आन्दोलन के साथ जुड़ गये। इससे संदर्भित उन्होंने कुछ रचनाएँ भी की। साठोत्तरी कविता की धारा 'अकविता' ये यह विशेष रूप से जुड़ गये, विजय देव नारायण साही का अन्य रूप एक आलोचक का है। वह विचारों से प्रगतिवादी हैं, किन्तु मार्क्सवादी शिविर से बाहर रहते हुए कार्य करते रहे है। इनका नाम नलिन विलोचन शर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, रमेश कुंतल मेघ आदि की श्रेणी में लिया जाता है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार, ''आधुनिक आलोचना के क्षेत्र में इलाहाबाद परिसर का अच्छा प्रतिनिधित्व करते है विजय देव नारायण साही''। नामवर और साही की जोड़ी आलोचना–लेखन और गोष्ठियों में चर्चित रही है, दोनों एक प्रकार के वाद–प्रतिवाद के रूप में सामने आते है। नामवर प्रगतिवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध है, जबकि साही को अपनी रचनात्मकता से इतर कोई प्रतिबद्धता स्वीकार्य नही है। दोनों की अध्ययनशीलता एवं तर्कशीलता एक–दूसरे के टक्कर में रही। दोनों की मान्यता समान है कि रचना को आलोचना के केन्द्र में रहना चाहिए।

विजय देव नारायण साही का आलोचनात्मक लेखन अधिकतर स्फुट रूप में रहा। उनके आलोचनात्मक निबन्ध विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में छपते रहे है। इस संदर्भ में उनका लम्बा आलोचनात्मक निबन्ध

'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' (छायावाद से अज्ञेय तक) बहुत प्रसिद्ध रहा। वह 'नई कविता' के संयुक्तांक 5–6 में छपा था।

आलोचना प्रक्रिया के संदर्भ में साही की मूलभूत मान्यता (डॉ. नामवर सिंह के समान) यह है कि "समूची नई कविता को ठीक–ठीक देखने के लिए , नई कविता के प्रतिमान की जरूरत नहीं है, बल्कि कविता के नये प्रतिमान की जरूरत है। साही का काव्यालोचन अधिकतर इस बुनियादी निष्पत्ति के लिए लिखा गया है। वह चाहे जिस पर आलोचना लिख रहे है, उनकी आलोचना की मूलभूत शब्दावली एक–सी रहती है। फिर उन शब्दों की भंगिमा से वह उन अलग–अलग कवियों का वैशिष्ट्य दिखाने का प्रयत्न करते है। आलोचना की भाषा की ऐसी समरसता बनाए रखना हर बड़े आलोचक की महत्वकांक्षा होती है।

III. प्लेटो और अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त तथा अरस्तु का विरेचन सिद्धान्त –

प्लेटो और अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त – प्लेटो कला में अनुकरण सिद्धान्त को स्वीकार करता है, परन्तु वह सत्यनिष्ठ मूलादर्शयुक्त अनुकरण का पक्षधर है। वह शुभ और सत्य के अनुकरण को ही महत्व देता है। उसके अनुसार अनुकरण में पर्याप्त कठिनाइयाँ भी है – भ्रान्ति, अज्ञान, असावधानी, भावात्मक उत्तेजना आदि। अरस्तू के अनुकरण सिद्धान्त में अनुकरण वे तात्पर्य प्रतिकृति न होकर पुनः सृजन अथवा पुनर्निर्माण माना है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध समालोचक स्कॉट जेम्स के अनुसार अरस्तू के अनुकरण का अर्थ इस प्रकार है – "अनुकरण साहित्य में वस्तुपरक अंकन तथा जीवन का कल्पनात्मक पुनर्निर्माण है।"

बूचर का कहना है कि "अरस्तु के अनुकरण शब्द का अर्थ है सादृश्य–विधान अथवा मूल का पुनरूत्थान, सांकेतिक उल्लेख नहीं। वह कला या कविता को मानव–जीवन के सर्वव्यापक तत्व को अभिव्यक्ति मानता है और अनुकरण को रचनात्मक प्रक्रिया ठहराता है। संक्षेप में अरस्तू के अनुसार प्रत्येक वस्तु पूर्ण विकसित होने पर जो होती है उसे ही प्रतिकृति कहते है।

विभिन्न समीक्षकों ने अरस्तू के अनुकरण शब्द को अनेक प्रकार से लिया है। सबका निष्कर्ष यह है – "अनुकरण एक तन्त्र है जिसके द्वारा कवि अपनी कल्पनात्मक अनुभूति को, प्रक्षेपणीय अभिव्यक्ति को अन्तिम रूप प्रदान करता है। वस्तुतः अनुकरण का अर्थ हू–बू–हू नकल न होकर संवेदना, अनुभूति, कल्पना, आदर्श आदि के प्रयोग द्वारा अपूर्ण को पूर्ण बनाना है। काव्य मानव–जीवन में सार्वभौम तत्व का अनुकरण करता है। व्यक्ति में जो सार्वभौम गुण है, उनका उद्घाटन करता है। कलाकार सार्वभौम

VPM CLASSES

को पहचानकर अनुकरण द्वारा उसे सरल एवं ऐन्द्रिक रूप में पुनरूत्पादित करता है। कलाकृति कलाकार के मनोगत बिम्ब का प्रतिफल होती है।''

अरस्तू का विरेचन सिद्धान्त – विरेचन सिद्धान्त को प्लेटो ने अपने संवादों में व्यक्त किया था। अरस्तु ने उसको एक व्यवस्थित सिद्धान्त का रूप प्रदान किया। अरस्तू ने अपने विरेचन सिद्धान्त का विवेचन त्रासदी के संदर्भ में किया है। अरस्तू ने इस शब्द का प्रयोग दो संदर्भों में किया है – एक तो 'पोइटिक्स' नामक ग्रन्थ में त्रासदी का विवेचन करते समय तथा दूसरे 'पॉलिटिक्स' नामक ग्रन्थ में।

चिकित्साशास्त्र के विरेचन को अरस्तू ने काव्यशास्त्र में प्रयुक्त किया। प्लेटो ने यह आरोप लगाया था कि काव्य हमारी दूषित भावनाओं को उत्तेजित करता है, इसलिए हानिकारक है। इसी का उत्तर देते हुए अरस्तू ने यह कहा है कि ''कला और काव्य द्वारा हमारे मनोविकारों का विरेचन (शुद्धिकरण) हो जाता है। इसलिए काव्य हानिकारक न होकर स्पृहरणीय होता है।'' संगीत का उदाहरण देते हुए अरस्तु ने अपने 'विरेचन सिद्धान्त ' की व्याख्या इस प्रकार की है – ''संगीत सुनते समय हम कार्य और आवेश को अभिव्यक्त करने वाले रागों का भी आनन्द ले सकते है, क्योंकि करूण और त्रास अथवा आवेश कुछ व्यक्तियों में प्रबल होते है और न्यूनाधिक प्रभाव तो प्रायः सभी पर रहता है। कुछ व्यक्ति 'हाल' (पूर्ण तन्मयता) की दशा में आ जाते है, किन्तु हम देखते है कि धार्मिक रागों के प्रभाव से जो रहस्यात्मक आवेश को उद्‌बुध करते है – वे शान्त हो जाते हैं –मानो उनके आवेश का शमन और विरेचन हो गया हो। करूणा और त्रास से आविष्ट व्यक्ति, प्रत्येक भावुक व्यक्ति इस प्रकार न्यूनाधिक अनुभव करता है और इस विधि से एक प्रकार की शुद्धि का अनुभव करता है। इस प्रकार विरेचित राग मानव–जीवन को निर्दोष आनन्द प्रदान करता है। अरस्तु के अनुसार करूणा और त्रास के उद्रेक द्वारा कवि मानव विकारों का उचित विरेचन करने में समर्थ होता है। इसी कारण हम दुःखान्त काव्य को पढ़कर आनन्द प्राप्त करते है और हमारे भाव एवं विचार उदात्त बन जाते है।

अरस्तू का सिद्धान्त बहुत कुछ भारतीय रस सिद्धान्त के समकक्ष प्रतीत होता है, परन्तु दोनों के मध्य एक मौलिक अन्तर है – भारतीय रस सिद्धान्त रस का आस्वाद करूण भाव का शमन न होकर उसका भोग ठहरता है। विरेचन सिद्धान्त आधुनिक मनोविज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है। मनोविश्लेषण में भावनाओं की अतृप्ति या दमन को मानसिक रोगों का कारण माना जाता है। दमित भावनाओं की अभिव्यक्ति इसका उपचार है। मन के स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि वासनाओं के अभिव्यक्ति का अवसर दिया जाए। अरस्तु का विरेचन भी तो यही करता है। अरस्तु के पिता मैसीडोनिया के राज–चिकित्सक थे और अरस्तू ने भी चिकित्साशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। इस कारण अरस्तू ने

काव्य के संदर्भ में विरेचन शब्द का प्रयोग किया। भारतीय चिकित्साशास्त्र में रोग के निदान में इसका महत्व है। शरीर के अनावश्यक हानिकारक, अस्वस्थ अहितकर पदार्थो को बाहर निकालने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।

अरस्तू के विरेचन के संदर्भ में की गई उक्त विवेचना का निष्कर्ष है – ''धार्मिक संगीत की चर्चा करके और मानसिक शुद्धि की बात स्वीकार करके अरस्तू ने उसके धार्मिक और मानसिक रूप को स्वीकार किया है। धर्मपरक, मानसिक तथा कलात्मक तीनों अर्थो में इस सिद्धान्त में सत्य का अंश विद्यमान है।

IV. वर्डस्वर्थ का काव्यभाषा सिद्धान्त :

19वीं शताब्दी के आरम्भ में विलियम वर्डस्वर्थ ने काव्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का नव–शास्त्रवाद से सम्बन्ध तोड़कर एक नयी विचारधारा का प्रवर्तन किया, जो स्वच्छन्दतावाद के नाम से जानी जाती है। अपने संग्रह 'लिरिक्स बैलेड्स' में उन्होंने कवि कविता तथा काव्य भाषा के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किए थे और उसके बाद उनमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन करते रहे थे।

वर्डस्वर्थ ने प्रचलित काव्य शैली और भाषा को रूढ़ बताकर अनुपयोगी माना और व्यक्तिवाद एवं भावात्मकता के आधार पर उसका विकास किया–यानी उसका विकास स्वछंदतावाद के परिप्रेक्ष्य में किया। वर्डस्वर्थ ने सामान्य भाषा को काव्य भाषा के लिए विशेष उपादेय माना और उसका समर्थन किया। ध्यातव्य है कि टी.एस.इलियट के भी भाषा सम्बन्धी विचार बहुत कुछ ऐसे ही है। वर्डस्वर्थ पूर्व प्रचलित आलंकारिक एवं उच्च विचार श्रेणी की भाषा को कृत्रिम कहते है और उसके लिए किसी प्रकार के नियम–उपनियम निर्धारित करने के विरुद्ध है। यहाँ तक कि विशिष्ट काव्यगत उक्तियों, मानवीकरण, वक्रोक्ति आदि में भी वह विरूद्ध दिखाई देते है। उन्होंने काव्य–रचना में विपर्यय और वैषम्य के प्रति भी अरूचि प्रदर्शित की है। अनावश्यक रूप से पौराणिक कथाओं का समावेश भावाभास तथा दन्त कथाओं के प्रयोग को भी वह पसंदइ नहीं करते थे, कहते का तात्पर्य यह है कि वह भाषा के संदर्भ में प्रत्येक प्रकार की कृत्रिमता एवं पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रकृति को स्वीकार करते है। हाँ इतना अवश्य है उक्त काव्य प्रयोगों को यदि युगानुरूप रूचि के संदर्भ में किया जाता है तो वह उसे निजी सीमा तक स्वीकार करने के पक्ष में जाता है।

एक आलोचक ने वर्डस्वर्थ की काव्य शैली को लक्ष्य करके लिखा है कि "× × उनकी भाषा अत्यन्त शिथिल है, अपने काव्य में वह उन्हीं अनेक काव्योक्तियों का प्रयोग करते है, जिनके प्रति वह विरोध प्रकट कर चुके होते है। उनकी भाषा में अलंकारों का प्रयोग भी मिलता है और कई स्थलों पर उनकी भाषा दुरूह हो गई है। जो भी हो, समग्र रूप से वर्डस्वर्थ ने भाषा की सरलता पर विशेष बल दिया है।

प्रश्न उठता है कि जनसाधारण की भाषा Natural Language से वर्डस्वर्थ का क्या तात्पर्य है। उनके ग्रन्थ 'लिरिकल बैलेडस्' को छोड़कर अन्य किसी भी ग्रन्थ में ग्राम्य भाषा का प्रयोग नहीं मिलता है। बाद में उन्होंने भाषा में सुधार और परिवर्तन की बात कहकर अपने विचारों में संशोधन किया है – Selection of the Real Language of Man होना चाहिए। स्पष्ट है कि वह सामान्य भाषा की ज्यों–का–त्यों अपनाने के पक्ष में नहीं थे– वरन् उसमें चुनाव करना आवश्यक समझते थे। अतः सरल भाषा से वर्डस्वर्थ का तात्पर्य अभिव्यक्ति की सरलता है जो आडम्बरहीन, सरल, स्वाभाविक और सजीव हो तथा पाठक के मन में किसी प्रकार की उलझन अथवा अरूचि उत्पन्न न करके आल्हाद की उत्पत्ति करे। इसी परिप्रेक्ष्य में वह भाषा में चुनाव की बात करते है जिससे शैथिल्य, ग्राम्यत्व आदि दोषों से भाषा को बचाया जा सके।

वर्डस्वर्थ के अनुसार कवि जितनी भाषा के निकट पहुँचेगा, उसकी भाषा शैली उतनी ही सच्ची होगी और कवि कर्म में उसको उतनी ही सफलता प्राप्त होगी यथा The Language of the poets falls short of that which is ultered by man in real life, under the actual pressures.

V. कोलरिज कल्पना और फैन्टेसी –

कल्पना और भावना का सम्बन्ध बहुत निकटस्थ है। कुछ विद्वान दोनों को अभिन्न मानते है और कुछ उनमें भेद करके चलते है। महाकवि शैक्सपियर काव्य में कल्पना को उसका प्रधान गुण मानते है। वस्तुस्थिति भी प्रायः यही है कि कल्पना शक्ति के मूल में ही कवि की सर्जनाशक्ति है। कल्पना का औदात्य ही उसको असाधारणत्व प्रदान करता है। कोलरिज ने कल्पना के संदर्भ में गहन चिन्तन किया है। कोलरिज मन को सक्रिय मानते हुए कहते है – "To make perception possible there is needed an active power of mind itself" अर्थात् ''दर्शनानुभूति के लिए मन का स्वयं सक्रिय होना आवश्यक है।''

कोलरिज कल्पना और फैन्टेसी को दो भिन्न वस्तुएं मानते है। उनके मतानुसार फैन्टेसी वह प्रवृत्ति है जो चित्र संघातों को उत्पन्न करती है। कोलरिज के फैन्टेसी सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालते हुए मेगनस ने लिखा है कि कोलरिज के अनुसार, ''फैन्टेसी वह प्राकृतिक शक्ति है जिसके द्वारा चित्र संघातों की सृष्टि होती है।''

कल्पना के निम्नलिखित लक्षण बताए गए है –

1. कल्पना पूर्व अनुभूतियों पर आधारित होती है।
2. कल्पना भविष्य की ओर उन्मुख होती है।

VPM CLASSES

3. कल्पना को क्रियाशक्ति प्रभावित करती है।
4. कल्पना बुद्धि के नियन्त्रण से मुक्त होती है।
5. कल्पना का आलम्बन अप्रत्यक्ष होता है।
6. कल्पना की सामग्री बिम्बों के रूप में मस्तिष्क में संचित रहती है तथा
7. कल्पना का कार्य पूर्व उपलब्ध ज्ञान सामग्री को नए रूप में प्रस्तुत करना है।

विवेचन का सारांश यह है कि कल्पना वस्तु को अधिक प्रभावोत्पादक तथा भाषा–शैली को अधिक चमत्कारिक बनाती है। वस्तुतः कल्पना से कुछ भी रिक्त नहीं है – यहाँ तक कि वस्तु जगत में जो कुछ हम देखते हैं, वह भी हमारी भीतरी कल्पना का ही प्रतिबिम्ब है।

VI. टी.एस.इलियट के निर्वैयक्तिकता का सिद्धान्त :

बीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य समीक्षा को प्रभावित करने वाले विचारकों में टी.एस.इलियट का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने बहुत सी बातों में अपने कई पूर्ववर्ती एवं समकालीन पाश्चात्य साहित्यकारों एवं समीक्षकों के प्रभावों को स्वीकार करते हुए अपनी मौलिक मान्यताएँ स्थापित की है।

कविता की निर्वैयक्तिकता का सिद्धान्त : व्यक्तिगत निष्ठा अनेकता को जन्म देती है। अनेकता को एकता में बाँधने के लिए और वैयक्तिकता पर नियन्त्रण करने के लिए इलियट ने परम्परा को महत्व दिया और जीवन से काव्य का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया। स्वच्छन्दतावादी वैयक्तिकता की अतिशयता देखकर ही इलियट ने साहित्य में वस्तुनिष्ठता का अनुभव किया और तद्नुसार प्रतिपादन किया। वैयक्तिकता का खण्डन करते हुए उसने कहा, ''कवि व्यक्ति की अभिव्यक्ति नहीं करता, बल्कि उससे वैयक्तिकता (व्यक्तिगत भावों की अनुभूति) पलायन करती है। कलाकारों की प्रगति निरन्तर आत्मत्याग और व्यक्तित्व के बहिष्कार में है।'' वैयक्तिकता में कवि यह मानकर चलता है कि मैं रचना करता हूँ। इस स्थिति में वह अपने अन्तर्मन को प्रकट करता है, परन्तु सृजन के क्षणों में कवि को इस बात का बोध नहीं रहता कि कुछ सृजन–क्रिया के मध्य है। आत्म–विस्मृति की दशा में वैयक्तिक चेतना तिरोहित हो जाती है, हो भी जानी चाहिए। ऐसी स्थिति में कवि की वैयक्तिकता अथवा वैयक्तिक चेतना का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इलियट ने तो कवि को मध्यस्थ बताया है। मध्यस्थता और वैयक्तिकता परस्पर विरोधी है।

इलियट ने निर्वैयक्तिकता के दो रूप माने है – (1) प्राकृतिक, जो कुशल शिल्पीमात्र के लिए होती है तथा (2) प्रौढ़ कलाकारों द्वारा उपलब्ध निर्वैय्यक्तिकता। इलियट ने दोनों का विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि ''प्रौढ़ कवि का वैयक्तिक अनुभव क्षेत्र भी निर्वैयक्तिक हो जाता है।''

सारांश यह है कि इलियट पहले तो कविता के कुशल शिल्प–विधान मात्र मानते थे, परन्तु बाद में निर्वैयक्तिकता का अर्थ प्रौढ़ कवि के निजी अनुभव की सामान्य अभिव्यक्ति मानने लगे। इलियट ने भावों की इस अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान की है जो भाव सर्वसाधारण के बन जाते है। अतः कविता के सम्बन्ध में निर्वैयक्तिक प्रज्ञा का अर्थ होगा कवि के भावों के सम्बन्ध में निर्वैयक्तिक प्रज्ञा का अर्थ होगा कवि के भावों का सामान्यीकरण। यही भारतीय काव्यशास्त्र का साधारणीकरण है। कवि के अपने अनुभव में व्यक्त होकर सर्वमान्य हो जाते है। अतः इलियट के निर्वैयक्तिक सिद्धान्त को व्यक्तित्व सारांश से रहित नहीं लिया जा सकता है।

इलियट की वस्तुनिष्ठ सह–सम्बन्धी और परम्परा की अवधारणा :

इलियट ने साहित्य की आधारभूत समस्याओं पर विचार करते समय परम्परा पर भी विचार किया है। परम्परा पर विचार करते समय इलियट ने लिखा है कि परम्परा के अभाव में कवि छाया मात्र है और उसका कोई अस्तित्व नहीं होता है। इलियट परम्परा का अर्थ अन्धाधुकरण न मानकर साहित्य के प्रवाह के साथ जुड़ना तथा ऐतिहासिक चेतना और उसके ज्ञान को मानते है। इलियट के इस चिन्तन के मूल में तत्कालीन परिस्थितियाँ रहीं।

19वीं शती के अन्त में स्वच्छन्दतावाद का वर्चस्व हो गया था। इसकी भावात्मक आत्माभिव्यंजना की प्रबलता ने इसे अस्पष्ट बनाया। इलियट ने स्वच्छन्दतावाद की आत्म–निष्ठता का विरोध कर क्लासिक मत का प्रतिपादन किया। वैयक्तिकता के कारण वस्तुनिष्ठता दूर भागने लगी और साहित्य अपने लक्ष्य से दूर जाता हुआ दिखाई दिया। अतएव इन्होंने कविता के क्षेत्र में व्यवस्था की स्थापना की आवश्यकता का अनुभव किया और अरस्तू को अपना आदर्श मानक अनेकता में एकता मत का प्रचार किया।

इलियट ने परम्परा को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि परम्परा को छोड़ देने से हम वर्तमान को भी छोड़ बैठेंगे। परम्परा से इलियट का तात्पर्य था उन सभी स्वाभाविक कार्यो, रीति–रिवाजों (धार्मिक कृत्यों से लेकर नवागन्तुक के अभिवादन को अभिवादन करने के स्वीकृत रीतियों तक) से है, जो एक स्थान पर रहने वाले एक समुदाय के व्यक्तियों के रक्त–सम्बन्ध को व्यक्त करते है। इस प्रकार इलियट परम्परा का सम्बन्ध संस्कृति से मानता है।

परम्परा का जीवन–रस विकास अथवा परिवर्तन है। परिवर्तन नवीनता का जनक है। अतः परम्परा निर्वाह के लिए कवि की मौलिकता अपरिहार्य है। इस सिद्धान्त के आधार इलियट ने आत्मनिष्ठ काव्य का विरोध और वस्तुनिष्ठ काव्य का समर्थन किया तथा कला को निर्वैयक्तिक घोषित किया। साथ ही उसने कवि को परम्परा की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है।

उसकी मान्यताएँ संक्षेप में इस प्रकार है –

1. इलियट का परम्परा सिद्धान्त न रूढ़ि पालन है और न मौलिकता का विरोधी। वह आत्मनिष्ठता का विरोधी एवं वस्तुनिष्ठता का समर्थक है।
2. परम्परा का अर्थ है कला तथा काव्य की प्रमुख धाराओं के चले आते स्वरूप का ज्ञान।
3. परम्परा के ज्ञान एवं निर्वाह के लिए कलाकार के लिए विस्तृत ज्ञान की अपेक्षा रहती है। परम्परा से ज्ञान का विस्तार होता है।

VII. रूसो रूपवाद, नई समीक्षा –

रूसो रूपवाद :

रूसो रूपवाद पहला सम्प्रदाय है जिसने साहित्य के रूप में साहित्याध्ययन की एक सम्पूर्ण पद्धति प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। यूरोप में रूसो रूपवाद पर अध्ययन और वाद–विवाद की एक परम्परा उपलब्ध होती है। हिन्दी में इसकी अवधारणा स्पष्ट नही है। रूसो रूपवाद पॉजिटिविज्म अति के विरूद्ध एक वैचारिक विक्षोभ था। कुछ लोग पूरी बात समझे बिना ही मार्क्सवाद के नाम पर रूपवाद की निन्दा कर बैठते है। पॉजिटिविज्म के नाम पर साहित्य दर्शन, इतिहास, राजनीति, मनोविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र आदि का अजायबघर बन जाता था।

रूपवाद कोई पद्धतिशास्त्र नहीं है, सौन्दर्यशास्त्र है। यह साहित्य का एक आत्मनिर्भर और साहित्य विज्ञान तैयार करने का ऐसा प्रयत्न करता है जो साहित्य–सामग्री का अध्ययन कर सके। अतः रूपवाद के सामने मुख्य प्रश्न यह होता है कि साहित्य का वास्तविक अध्ययन विषय क्या है ? रूपवाद की इस चिन्ता की सीमा में प्रतिबिम्ब और अभिव्यंजनावाद नहीं आते है। अब तक साहित्य की या तो लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति समझा गया था या समाज का प्रतिनिधिक प्रक्रिया–प्रतिबिम्ब। रूपवाद ने इन मतों का खण्डन किया और कहा – यदि कृति लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है।

रूपवाद ने बेहद दृढ़ता और स्पष्टता से सिद्ध किया–साहित्य को किसी अन्य चीज में बदलकर नहीं देखा जा सकता। साहित्य का अन्य शास्त्रों से भेद के आधार पर अलग अस्तित्व है। नृत्य कला है, रूप है। इसी तरह सामान्य भाषा अन्तर्भुक्त हो जाती है। कविता इस भाषा को कभी टेढ़ी, कभी कठिन, कभी जटिल बनाकर अपिरचय से परिचय देती है। यही रूपवाद है। रूसो रूपवाद ने सबसे बड़ा काम यह किया कि उसने साहित्य की प्रचलित सर्व संग्रहवादी दृष्टि को व्यर्थ का दिया और साहित्य अध्ययन को एक स्वतन्त्र अनुशासन बनाया। मनगढंत अन्दाजों और मनगढंत निष्कर्षवाद से मुक्त कर रूपवाद ने समीक्षा को एक निश्चित अध्ययन में बदल दिया वस्तुतः रूपवाद उन तरकीबों का अध्ययन था जो भाषा

VPM CLASSES

को नया या अजनबी बनाती है। कुछ लोगों के मतानुसार रूपवाद नाम उपयुक्त नहीं था। एकनबॉम ने कहा कि वह रूपवादी नहीं है, बल्कि विशेषान्वेषी है। विशेष तत्व की खोज उन्हें रूपवादी बनाती है। रूसो रूपवाद ने दुनियाभर के साहित्य को रचनाकार और परिस्थिति से अलग कर दिया। लिखित पाठ या टेक्स्ट की अवधारणा के बीज यहीं पड़े जो बाद में संरचनात्मक तथा उत्तर संरचनावाद के बुनियादी और निर्णायक पद बने। यहीं आधुनिक भाषा विज्ञान और साहित्य में एक नया सम्बन्ध स्थापित हुआ। यही भाषा विज्ञान का संरचनावादी सूत्र था जो संचार के उद्देश्य के लिए भाषा की संरचना के प्रकार्य को समझने की कोशिश में था। फर्डीनांद सासूर (1857–1913) ने भाषा में संरचनावाद की नीवं डाली, जो रूसो रूपवाद के लगभग समानान्तर था।

नई समीक्षा पद्धति :

नई समीक्षा (आलोचना) पद्धति व्यक्ति पर आधारित एक नवीन प्रकार की आलोचना पद्धति है। इसे आत्मगत आलोचना भी कहते है, जो स्वच्छन्द व्यक्तिवाद और आत्मचेतना का परिणाम है। आत्मगत आलोचना को आत्मप्रधान, प्रभावादि व्यंजना आलोचना भी कहते है। मुक्ति बोध, नागार्जुन तथा अज्ञेय कृत आलोचना पद्धति पर कई विचारधारा का प्रभाव दिखाई पड़ता है, यथा – प्रभाववाद, मनोविश्लेषण, मार्क्सवाद, संरचनावाद शैली विज्ञान विखण्डनवाद तथा उत्तर आधुनिकतावाद।

इस आलोचना पद्धति के अन्तर्गत काफी महत्वपूर्ण गवेषणात्मक शोध–कार्य हुआ है। इसके द्वारा नवीन सामग्री एवं नवीन तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है और साहित्य के मूल्यांकन के प्रति नवीन चेतना उत्पन्न हुई है। नवीन परिस्थितियों एवं नवीन जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में समीक्षा के पुराने सिद्धान्तों की नई – नई व्याखाएँ प्रस्तुत की जा रही है। इनमें सुनियोजित सिद्धान्तों की झलक पाई जाती है। इनके नामों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके है। नई समीक्षा पद्धति के मुख्य सिद्धान्तों का परिचय इस प्रकार है –

आत्मप्रधानता या प्रभाववाद – यह आलोचना का स्वतन्त्र रूप में है, इस पद्धति का आलोचक किन्हीं नियमों या सिद्धान्तों में बँधकर नहीं चलता है। इस शैली का आरम्भिक रूप हमें भारतेन्दु युग में दिखाई देता है।

मनोविज्ञानवाद – इससे प्रभावित आलोचक लेखक या कवि के अन्तष् का अध्ययन करता है।

मनोविश्लेषणवाद – यह पद्धति फ्रायड और एडलर आदि विद्वानों की विचारधारा के अनुसार वाद या भावना का विश्लेषण और काव्य में उसकी अभिव्यक्ति का अध्ययन करते है।

मार्क्सवाद – इस आलोचन पद्धति की पृष्ठभूमि में मार्क्सवादी जीवन–दर्शन रहता है।

VPM CLASSES

संरचनावाद – संरचनात्मक में पाठक को प्रमुखता दी जाती है।

शैली विज्ञान – उसके भीतर में रचना का मूल्यांकन शैली–विज्ञान का मुख्य कार्य है। इस आलोचना पद्धति में भाषा को, विशेषकर शब्द को आधार बनाया जाता है।

विखण्डनवाद – उत्तर संरचनावाद ने भाषा के क्षेत्र में अपनापन, तादात्म्य और अर्थ की प्राचीन मान्यता का खण्डन किया।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि पहले संरचनावाद का जन्म हुआ, जिसने लेखन की अपेक्षा पाठ या पठन को श्रेष्ठ सिद्ध किया। इसके बाद उत्तर संरचनावाद का जन्म हुआ। इसने संरचनावाद को अतिशयता प्रदान की। इन दोनों का विरोध किया विखण्डनवाद ने। इस प्रकार नई समीक्षा पद्धति में वैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति का क्रमिक समावेश हुआ है।

VIII. संरचनावाद, उत्तर आधुनिकता, विखण्डनवाद –

संरचनावाद : सच्चे अर्थों में हिन्दी में आलोचना का आयात अंग्रेजी से हुआ और इसके प्रवर्तक रहे आचार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल। कालान्तर में अंग्रेजी से आने वाले अनेक वादों ने कविता और आलोचना को क्षेत्रों में प्रवेश किया, यथा–स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद। पिछले दशक में साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में संरचनावाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। संरचनावाद भाषा के क्षेत्र में अपनापन तादात्म्य और अर्थ को तोड़ता हुआ आया है।

संरचनावाद केवल एक आलोचना पद्धति ही नहीं है, इसमें दार्शनिकता का भी पर्याप्त अंश है। इसका जन्म बीसवीं शताब्दी के सातवें–आठवें दशक में फ्रांस में हुआ। कुछ विद्वानों के मतानुसार वह अब अतीत की वस्तु बन चुका है, उत्तर संरचनावाद का जन्म हो चुका है।

आज भूमण्डल का जो विकास हुआ है, उसमें सरंचनावाद की अवधारणा को सत्य माना जा रहा है। संरचनावाद को ओद्योगिक युग की रणनीति भी कह सकते है। इसका कारण है संरचनावाद का आधुनिक राज्य सत्ता और समाज का पूर्णरूप से रूपवाद होना। संरचनावाद वस्तुतः राजनीति के क्षेत्र में रणनीति है, जो मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष करती है। संरचनावाद के तन्त्र ने स्वाभाविक रूप से 19वीं शती के इतिहासवादी भाषा विज्ञान को हाशिए पर पहुँचा दिया। अंग्रेजी में इसे डाइक्रोनिक फाइकोलोजी कहा जाता है। भाषा की आम व्यवस्था और स्वतन्त्रवाक् में भेद स्पष्ट करने का कार्य भी सासूर ने किया। इसका प्रभाव अनिवार्य रूप में सांस्कृतिक चिन्तन पर पड़ा। फलतः संस्कृति के समस्त रूपों को अध्ययन व्याकरण के रूप में होने लगा। इस प्रकार भाषा विज्ञान ने दावा किया कि मानव विज्ञान के सभी पहलुओं को समझता है। इस समय देरिदा ने प्रश्न उठाया कि हम उस भाषा को

कितना स्वतन्त्र कह सकते है, जो स्वयं व्याकरण के रूप में भाषा की उपस्थिति की घोषणा करती है। इन तमाम ऊहापोहों के उपरान्त संरचनावाद के संदर्भ में देरिदा का यह कथन विचारणीय है कि –''अन्त में संरचनावाद भाषा की कैद के बाद हो जाता है। सरंचनावाद ने इस प्रश्न को ऊचाँई से उठाया कि क्या भाषा चीजों को तय करती है ? क्या ऐसी करते हुए भाषा देश में स्थिर नहीं होती ? भाषा जब चीजों को स्थिर करते हुए स्वयं स्थिर होने को अतिशप्त है, तो वह अपनी कैद बना लेती है।''

संरचनावाद में एक अवधारणा रही है जो बहुत शीघ्र एक निश्चित पद्धति का रूप धारण कर लेती थी। इस अवधारणा के कारण पाठ एक पूर्व योजना में परिवर्तित हो जाता था। इस अवधारणा के कारण पाठ के अनिश्चित तत्व छूट जाते थे। इस प्रकार प्रेमचन्द के 'गोदान' को जमींदारी का पाठ कहा जा सकता है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' को मनु के स्थान पर श्रद्धा का पाठ और आनन्दवाद के स्थान पर वेदना का पाठ कहा जा सकता है। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' को रामराज्य के स्थान पर कलियुग का पाठ कहा जा सकता है।

संरचनावाद ने पाठक का नया अवतार आरम्भ कर दिया था। यहीं से लेखन के केन्द्र से छूट जाता हैं और पाठक के बीच स्थान बना लेता है। इस प्रकार पाठक की स्थिति लेखक की विरोधी बन जाती है। संरचनावाद ने पाठक का यही नया अवतार आरम्भ किया। इसका कारण यह था कि संरचनावाद पाठ के भीतर पाठ को उत्पन्न करना चाहता था। यह भी सत्य है कि लेखन के लिए पाठक की अनिवार्यता सदा रही है। लेखन कभी भी पाठक से मुक्त नहीं हो सकता।

उत्तर आधुनिकता : हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अंग्रेजों के शासनकाल में आरम्भ हुआ। हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद, छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का अवतरण अंग्रेजी साहित्य में हुआ। निराला को तुकविहीन और विषम पंक्तियों की रचना लिखने की प्रेरणा अंग्रेजी कविता से मिली थी। हिन्दी समीक्षा या आलोचना का प्रवर्तक पं. रामचन्द्र शुक्ल को माना जाता है। उनकी समीक्षा अंग्रेजी से प्रभावित थी।

अनेक वादों का जन्म फ्रांस में हुआ, अंग्रेजी भाषा ने उन्हें बहुप्रचलित बनाया। संरचनावाद, उत्तर–संरचनावाद, विखण्डनवाद आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकतावाद ऐसी ही विचारधाराएँ है, जिनका जन्म फ्रांस में हुआ तथा अंग्रेजी के माध्यम में उनका प्रचार विश्व में हुआ।

फ्रांसीसी विद्वान फ्रांसु आल्योतर ने विकसित समाजों में विज्ञान और तकनीकी भूमिका तथा भाषा और व्यवहार के विषय में कुछ निष्कर्ष निकाले। वे निष्कर्ष 'द पोस्ट मॉडर्न कंडीशन ए रिपोर्ट ऑन नौलेज' नामक रिपोर्ट में सुरक्षित किए गए। यह रिपोर्ट फ्रांसीसी भाषा में सन् 1979 में प्रकाशित हुई। मैनचेस्टर

यूनिवर्सिटी प्रेस ने सन् 1986 में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। उक्त रिपोर्ट में जो 'पोस्ट मॉडर्नः पद है – इसी का हिन्दी अनुवाद 'उत्तर आधुनिक' रूप में हुआ। इसके प्रचलन के बाद आधुनिक को आधुनिकता में बदलकर 'उत्तर–आधुनिकता' बनाया। बाद में इस विचारधारा को उत्तर आधुनिकतावाद कहा गया।

उत्तर–आधुनिकतावाद का सम्बन्ध पश्चित की जीवन शैली और वहाँ के साहित्य से है। भारत का साहित्य और भारतीय जीवन शैली तो अभी से ठीक तरह से समझ ही नहीं पाई। यद्यपि भारतीय साहित्य में यदा–कदा उत्तर आधुनिकता की चर्चा हो जाती है तथापि भारतीय साहित्य उत्तर–आधुनिकतावाद से आक्रान्त नहीं है। हिन्दी साहित्य तो अभी उससे कोसों दूर हैं। सरचना, संरचनावाद और उत्तर–संरचनवाद हिन्दी आलोचना में चर्चा के विषय बन सके है। इन वादों अथवा विचारधाराओं के आधार पर अभी गद्य या पद्य साहित्य की रचना हो रही है।

विखण्डनवाद :

हिन्दी में विखण्डनवाद पाश्चात्य समीक्षा से आया है। वहाँ पहले संरचनावाद आरम्भ हुआ जिसने लेखन के आगे पाठ या पठन को श्रेष्ठ सिद्ध किया। इसके पश्चात् उत्तर–संरचनावाद का जन्म हुआ जिसने संरचनावाद को प्रतिबद्धता प्रदान की। विखण्डनवाद का जन्म इसके बाद हुआ। इसने संरचनावाद और उत्तर–संरचनावाद का खण्डन किया। इसी आधार पर इसका जन्म विखण्डनवाद पड़ा। उत्तर–संरचनावाद ने भाषा के क्षेत्र में अपनापन, तादात्म्य और अर्थ की प्राचीन मान्यता का खण्डन किया। उत्तर–संरचनावाद का विरोध या खण्डन करने के लिए जिसने विखण्डनवाद का विकास किया, उसका नाम है जॉन देरिदा। अब तक साहित्य की प्रकृति और उसके रूप के विषय में जो अवधारणाएँ चली आ रही थी, उन्हें विखण्डनवाद ने बदल दिया। विखण्डनवाद का दूरगामी प्रभाव पड़ा। उसका प्रभाव साहित्य समीक्षा के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि भाषा और दर्शन की प्रश्नोत्तरी को भी इसने परिवर्तित कर दिया। देरिदा की दृष्टि में रचना और समीक्षा में भेद नही है। विखण्डनवाद की दृष्टि सब बराबर है – आलोचना, दर्शन, भाषा विज्ञान, नृविज्ञान आदि समस्त मानव विज्ञान देरिदा के लिए सभी विखण्डन की वस्तु है।

देरिदा ने अपनी विखण्डनवादी रणनीति की व्याख्या नहीं की है। देरिदा के अनुसार विखण्डनवाद कोई अवधारणा भी नहीं है, क्योंकिक अवधारणा के लिए पक्की विचारधारा की आवश्यकता होती है। विखण्डनवाद पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। देरिदा की मौलिकता यह है कि उसका विखण्डन उसी तर्क को प्रस्तुत करना है जो सत्य का दावा करता है। यह देरिदा की पाठात्मक

रणनीति अथवा पढ़ने का ढंग है। भाषा की अलंकार योजना सत्य को कहती अवश्य है, पर छिपाती है है। देरिदा का विखण्डनवाद सभी अन्तर्विरोध को प्रकट करता हैं वह अच्छे और बुरे का अन्तर्विरोध नहीं है।

'औरत की तरह पढ़ना' उत्तर–संरचनावाद का नितान्त विखण्डनात्मक तत्व है। इसमें सैक्सवादी तत्व काम करता है। अगर पाठ को एक स्त्री के रूप में पढ़ा जाता है, तक सैक्स सम्बन्धी साहित्य सरलता से समझ में आ जाता है। पाठ में जो अर्थ है उसे अर्जित करना पड़ता है। जो पुरूषवादी आलोचना है वह इस दृष्टि की उपेक्षा करती है। अब तक जो आलोचना हुई, उसमें आलोचक का स्वर पुरूष के समान है। हम कह सकते है कि विखण्डन न केवल दमित लेखन का सक्रिय सहयोगी है, बल्कि एक सम्प्रेषित लेखन भी है।

VPM CLASSES